

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 60 — कृष्ण का रुक्मिणी से परिहास

5 October 2026



मोतियों से सजे शान्त कक्ष में रानी रुक्मिणी अपने प्रभु पर चँवर डुला रही हैं, और कुछ परिहास-भरे वचनों से श्रीकृष्ण उनके हृदय से ऐसा निर्मल प्रेम प्रकट करवा लेते हैं कि स्वयं कहते हैं — मैं जीत लिया गया हूँ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध का यह साठवाँ अध्याय हमें द्वारका में रानी रुक्मिणी के अन्तःपुर में ले चलता है, जहाँ प्रभु का एक परिहास और उस पर रानी का उत्तर यह दिखाते हैं कि भगवान को केवल भगवान के लिए प्रेम करना क्या है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)

- अध्याय: 60 (षष्ठितम अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: भगवान श्रीकृष्ण द्वारा रानी रुक्मिणी से परिहास
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए); कथा के भीतर भगवान श्रीकृष्ण और रानी रुक्मिणी
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: द्वारका में रानी रुक्मिणी के महल का अन्तःपुर
- केंद्रीय विषय: रुक्मिणी से भगवान का परिहास, उनका मूर्छित होना, भगवान की सान्त्वना, सच्ची भक्ति प्रकट करता उनका उत्तर, और उनके प्रेम की प्रशंसा
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 60, श्लोक 1-59
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, भाग 2)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

उनसठवें अध्याय में भगवान ने नरकासुर का वध किया, अदिति के कुण्डल और वरुण का छत्र लौटाया, मुक्त कराई गई राजकुमारियों से एक ही मुहूर्त में विवाह किया, और पारिजात वृक्ष द्वारका ले आए, जहाँ वे एक साधारण गृहस्थ की भाँति प्रत्येक रानी के महल में एक साथ निवास करने लगे।

रानी अपने प्रभु पर चँवर डुलाती हैं

श्री शुकदेवजी ने पुनः कहना आरम्भ किया। एक रात, उन्होंने राजा परीक्षित को बताया, राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी अपने अन्तःपुर में सखियों सहित अपने पति की सेवा कर रही थीं। जो अजन्मा प्रभु लीला से ही जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, और जिन्होंने धर्म की रक्षा के लिए यदुवंश में जन्म लिया था, वे वहाँ विराजमान थे और रानी उन पर चँवर डुला रही थीं।

शुकदेवजी उस कक्ष का वर्णन बड़े प्रेम से करते हैं। ऊपर मोतियों की लड़ियों से झालरदार चँदोवा तना था; मणियाँ ही दीपक का काम कर रही थीं; चमेली की मालाओं पर भौंरे गुंजार कर रहे थे; झरोखों से चाँदनी और उपवन से पारिजात की सुगन्ध भीतर आ रही थी। दूध के फेन-सी श्वेत गद्दी पर समस्त लोकों के स्वामी बैठे थे, और रुक्मिणी ने सखी के हाथ से रत्नजटित मूठ वाला चँवर लेकर उन्हें हवा करना आरम्भ किया। ये स्वयं लक्ष्मी थीं, अमृत-सी मुसकान से दीप्ता। उन्हें इस रूप में देखकर, सबके मन को हरने वाले श्रीकृष्ण मुसकराते हुए बोले।

भगवान के परिहास-भरे वचन

“राजकुमारी,” उन्होंने कहा, “धन, रूप और बल में लोकपालों की बराबरी करने वाले राजाओं ने तुम्हारा हाथ चाहा था; तुम्हारे भाई और पिता ने तुम्हें चेदिराज और अन्यो को देना निश्चित किया था। तुमने उन सबको छोड़कर हमें क्यों चुना, जो तुम्हारे योग्य नहीं? हम राजाओं से डरते हैं; हम समुद्र में जा छिपे हैं और राजसिंहासन लगभग त्याग ही दिया है। जिन पुरुषों का मार्ग स्पष्ट नहीं, उनके पीछे चलने वाली स्त्रियाँ दुःख ही पाती हैं। हमारे पास कुछ नहीं, और हम उन्हीं को प्रिय हैं जिनके पास कुछ नहीं; इसीलिए धनवान प्रायः मेरी ओर नहीं आते।”



दूध के फेन-सी श्वेत गद्दी पर बैठे श्रीकृष्ण मुसकराकर अपनी रानी से पूछते हैं कि उन्होंने शक्तिशाली राजाओं को छोड़कर राजाओं से डरकर समुद्र में छिपे एक निधन को क्यों चुना।

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ।

तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥

yayor ātma-samam vittaṁ janmaiśvaryākṛtir bhavaḥ tayor vivāho maitrī ca nottamādhmayoḥ kvacit

अर्थ: विवाह और मित्रता उन्हीं दो के बीच उचित है जो धन, कुल, ऐश्वर्य, रूप और भविष्य में परस्पर समान हों — एक उत्तम और एक अधम के बीच कभी नहीं। (स्कन्ध 10, अध्याय 60, श्लोक 15)

“हे विदर्भराजकुमारी,” प्रभु ने आगे कहा, “यह न देखकर तुमने हमें चुन लिया, जिनकी प्रशंसा भिखारी व्यर्थ ही करते हैं। अब भी किसी अपने समान क्षत्रिय को चुन लो और उसके द्वारा अपने हृदय की कामना पाओ। शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र और तुम्हारा अपना भाई रुक्मी — सब मुझसे द्वेष रखते हैं; मैं तुम्हें केवल उन अभिमानी राजाओं का गर्व चूर करने को हर लाया था। हमें स्त्री, सन्तान या धन की कोई कामना नहीं; आत्मा में पूर्ण होकर हम घर और देह के प्रति दीपक की भाँति हैं — केवल साक्षी, जो कुछ करता नहीं।”

रानी का शोक

जो रुक्मिणी सदा उनके पास रहने के कारण स्वयं को उनकी सबसे प्रिय पत्नी मानती थीं, उनसे इतना कहकर, उस मान को दूर करने की इच्छा से प्रभु चुप हो गए। अपने प्रियतम से ऐसे वचन उन्होंने पहले कभी नहीं सुने थे। वे भय से काँप उठीं, आँसू बह चले, और वे अपार शोक में डूब गईं। उनका कण्ठ रूँध गया; वे नीचा मुख किए भूमि कुरेदती खड़ी रहीं, और काजल से काले आँसू उनके वस्त्र भिगोते रहे।



अपने प्रियतम से पहले कभी न सुने वचनों से आहत रुक्मिणी के हाथ से चँवर छूट जाता है और वे आँधी से उखड़े केले के वृक्ष की भाँति गिर पड़ती हैं।

फिर व्यथा, भय और शोक ने उनकी सुध-बुध छीन ली। चँवर हाथ से छूट गया, ढीली कलाई से कंगन सरक गए, और वे मूर्छित होकर गिर पड़ीं, बाल बिखरे हुए, मानो आँधी से उखड़ा केले का वृक्ष।

प्रभु उन्हें उठाते हैं

अपनी प्रिया को प्रेम के बन्धन में इतना बँधा देखकर कि वे उनके परिहास को समझ भी न सकीं, दयामय प्रभु करुणा से भर उठे। वे तुरन्त शय्या से उतरे और — चतुर्भुज रूप प्रकट कर — उन्हें उठाया, उनके बिखरे केश सँवारे, और अपने करकमल से उनका मुख पोंछा। उस साध्वी रानी को थामकर प्रभु ने उन्हें धीरज बँधाय़ा, क्योंकि वे ऐसे परिहास से विचलित हुई थीं जिसकी वे पात्र न थीं।



करुणा से द्रवित प्रभु शय्या से उतरकर रानी के बिखरे केश सँवारते और मुख पोंछते हैं, यह आश्वासन देते हुए कि वे केवल परिहास कर रहे थे।

“हे वैदर्भी,” उन्होंने कहा, “मुझसे रुष्ट मत हो। मैं जानता हूँ कि तुम मुझमें अनुरक्त हो। मैंने केवल तुम्हारा प्रत्युत्तर सुनने और प्रणय-कोप से काँपते अधरों व तनी भौंहों वाला तुम्हारा मुख देखने के लिए परिहास किया था। गृहस्थों का सबसे बड़ा लाभ यही है कि वे प्रिय के साथ कुछ घड़ियाँ हँसी-विनोद में बिताएँ।”

सान्त्वना पाकर रुक्मिणी ने परिहास समझ लिया, त्यागे जाने का भय छोड़ा, और लज्जा-भरी स्नेहमयी मुसकान के साथ उत्तर दिया।

रुक्मिणी का विवेकपूर्ण उत्तर

“हे कमलनयन, आपने जो कहा, वैसा ही है,” उन्होंने आरम्भ किया। “मैं सचमुच आपके योग्य नहीं। कहाँ आप, ब्रह्मा, विष्णु और शिव के भी स्वामी, अपनी महिमा में स्थित — और कहाँ मैं, मात्र प्रकृति, जिसके चरण अज्ञानी पकड़ते हैं?”

सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः
शेते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा ।
नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं
त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम् ॥ ३५ ॥

satyaṁ bhayād iva guṇebhya urukramāntaḥ śete samudra upalambhana-mātra ātmā nityaṁ kad-indriya-gaṇaiḥ kṛta-vigrahas tvaṁ tvat-sevakair nṛpa-padam vidhutaṁ tamo 'ndham

अर्थ: हे उरुक्रम, यह सत्य है कि आप गुणों से मानो डरकर समुद्र में शयन करते हैं — किन्तु वह समुद्र हृदय है, और आप शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा हैं; आप दुष्ट इन्द्रियों से निरन्तर युद्ध करते हैं; और आपके सेवकों ने राजपद को अन्धकार समझकर ठुकरा दिया है। (स्कन्ध 10, अध्याय 60, श्लोक 35)

इस प्रकार उन्होंने प्रभु के एक-एक परिहास का गूढ़ अर्थ प्रकट कर दिया। आपका मार्ग इसलिए अस्पष्ट है कि आपके चरणकमल का मधु चखने वाले मुनियों की गति भी पशु-तुल्य मनुष्यों की समझ से परे है; आपके पास इसलिए कुछ नहीं कि आपसे भिन्न कुछ है ही नहीं; धन से अन्धे आपको नहीं जानते, भक्तों के आप परम प्रिय हैं। आपसे मिलन त्यागी ज्ञानियों के योग्य है, सुख-दुःख में बँधे दम्पतियों के नहीं।

“मैंने आपको चुना,” उन्होंने कहा, “यह जानकर कि मुनि आपकी महिमा गाते हैं और आप अपने भक्तों को स्वयं को दे देते हैं। मैंने ब्रह्मा और स्वर्ग के अधिपतियों को भी छोड़ दिया, जिनका सौभाग्य आपकी भृकुटि के एक संकेत से काल बहा ले जाता है। हे गदाग्रज, भय से समुद्र में छिपने की आपकी बात निरर्थक है: शार्ङ्ग धनुष की टंकार से आपने उन राजाओं को भगा दिया और मुझे वैसे ही ले आए जैसे सिंह अपना भाग ले जाता है। क्या अंग, पृथु, भरत, ययाति और गय अपने राज्य छोड़कर आपके चरण खोजने गए तो उन्हें कष्ट हुआ?”

कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्ध-
माघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम् ।
लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य
मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥

*kānyam śrayeta tava pāda-saroja-gandham āghrāya san-mukharitam janatāpavargam lakṣmy-
ālayam tv avigaṇayya guṇālayasya martyā sadoru-bhayam artha-vivikta-dṛṣṭih*

अर्थ: हे गुणों के धाम, जो विवेकशील मर्त्य स्त्री सत्पुरुषों द्वारा गाई गई, मुक्तिदायिनी, लक्ष्मी के निवास आपके चरणकमलों की सुगन्ध एक बार सूँघ ले, वह उसे ठुकराकर सदा महान् भय से घिरे किसी और की शरण क्यों लेगी? (स्कन्ध 10, अध्याय 60, श्लोक 42)



स्वस्थ होकर रुक्मिणी प्रभु के एक-एक परिहास को स्तुति में बदल देती हैं और कहती हैं कि जिसने उनके चरणकमलों की सुगन्ध सूँघ ली, वह स्त्री किसी और को नहीं चुन सकती।

उन्होंने प्रार्थना की कि जन्म-मृत्यु के छलपूर्ण चक्र से उपासक को छुड़ाने वाले आपके चरण जन्मों से भटकती मेरे आश्रय बनें। आपने जिन राजाओं का नाम लिया, उन्हें वह स्त्री चुने जिसके कानों में शिव और ब्रह्मा की सभाओं में गाई गई आपकी कीर्ति कभी नहीं पड़ी; जिसने आपके चरणों का मधु कभी नहीं चखा, वही मूढ़ स्त्री इस जीवित शव-सरीखी देह को पति मानकर सेवती है। “हे प्रभु, आप आत्माराम हैं और मुझमें कुछ विशेष नहीं देखते, तो भी आपके चरणों में मेरा प्रेम बढ़ता ही रहे। जगत् की वृद्धि के लिए आपने जो एक बार मुझ प्रकृति पर दृष्टि डाली, वही दृष्टि आपकी परम कृपा है।” प्रभु के वचनों को उन्होंने पूरी तरह निरर्थक भी नहीं कहा: अम्बा जैसी कोई-कोई स्त्री सचमुच किसी और को मन दे बैठती है, और ऐसी स्त्री को विवेकी पुरुष नहीं रखता।

प्रभु उनकी भक्ति की प्रशंसा करते हैं

प्रभु ने उत्तर दिया: “हे साध्वी, मैंने तुमसे परिहास इसीलिए किया था कि तुम्हें ठीक ऐसा ही बोलते सुन सकूँ; मेरे वचनों का जो अर्थ तुमने निकाला, वही पूर्ण सत्य है। हे कल्याणी, तुम जो भी वर मुझसे चाहो, वे सब सदा तुम्हारे ही हैं, क्योंकि तुम अनन्य भाव से मुझमें अनुरक्त हो — और मुझसे माँगे गए वर स्वयं कामनाओं से मुक्ति की ओर ले जाते हैं। हे अनघे, मैंने तुम्हारा प्रेम और पातिव्रत्य देख लिया: मेरे वचनों ने तुम्हें डिगाना चाहा, पर तुम्हारा मन मुझसे हट न सका।”

फिर उन्होंने उस गहरी शिक्षा को खोला। जो लोग मोक्षदाता प्रभु को केवल दाम्पत्य सुख के लिए भजते हैं, वे अपना हृदय विषय-सुख को सौंप चुके हैं और उनकी माया से मोहित हैं।

मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसम्पदं
वाञ्छन्ति ये सम्पद एव तत्पतिम् ।
ते मन्दभागा निरयेऽपि ये नृणां
मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसङ्गमः ॥ ५३ ॥

mām prāpya māniny apavarga-sampadam vāñchanti ye sampada eva tat-patim te manda-bhāgā niraye 'pi ye nṛṇām mātrātmakatvān nirayaḥ su-saṅgamaḥ

अर्थ: हे मानिनी, मोक्षरूपी सम्पत्ति और समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी मुझे पाकर भी जो केवल ऐश्वर्य ही चाहते हैं, वे मन्दभागी हैं, क्योंकि ऐसी वस्तुएँ तो नरक में भी मिल जाती हैं; और विषयों में डूबे मन वालों को नरक भी सुखद घर लगता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 60, श्लोक 53)

यहीं इस अध्याय का हृदय है। प्रभु एक घरेलू परिहास के द्वारा दिखा देते हैं कि उनसे प्रेम कोई सौदा नहीं है। रुक्मिणी आहत मान या माँगों से उत्तर दे सकती थीं; किन्तु उनका हर वाक्य केवल प्रभु को ही खोजता रहा। यह घोषणा करके कि उनके वरदान निष्कामता में पूर्ण होते हैं, और जो मोक्षदाता के पास केवल सम्पत्ति बटोरने आते हैं वे दयनीय हैं, श्रीकृष्ण भक्ति और लेन-देन के बीच रेखा खींच देते हैं। उनका परिहास परीक्षा थी, रुक्मिणी का अविचल मन उसका प्रमाण, और उनकी प्रशंसा उसका निर्णय।

“हे गृहेश्वरी,” वे आगे बोले, “शुभ है कि तुमने मेरी वह भक्ति निरन्तर निभाई जो संसार-बन्धन से छुड़ाती है। मेरे समस्त अन्तःपुर में तुम-सी स्नेहमयी पत्नी मुझे कोई नहीं दिखती — जिसने एकत्र हुए राजाओं को छोड़कर, मुझे केवल सुनकर जानते हुए भी, गुप्त सन्देश लेकर एक ब्राह्मण मेरे पास भेजा। तुमने युद्ध में हारे अपने भाई का विरूप किया जाना और अनिरुद्ध के विवाह में द्यूत-सभा में उसका वध सहा, पर हमसे वियोग के भय से उस दुःख का एक शब्द भी नहीं कहा। इसी से तुमने मुझे जीत लिया। मेरे विलम्ब पर तुम्हें संसार सूना लगा और तुम यह देह तक त्यागने को तैयार थीं। ऐसे प्रेम का हम कोई प्रतिदान नहीं दे सकते; हम केवल आनन्द से उसका अभिनन्दन करते हैं।”



प्रभु स्वीकार करते हैं कि रुक्मिणी के अविचल प्रेम ने उन्हें जीत लिया है, और सिखाते हैं कि उनसे माँगे गए वर धन की ओर नहीं, मोक्ष की ओर ले जाते हैं।

गृहस्थ-रूप में प्रभु

इस प्रकार सर्वशक्तिमान प्रभु ने, आत्मानन्द में मग्न रहते हुए भी, मनुष्यों की रीति का अनुकरण किया और रुक्मिणी-रूपा लक्ष्मी के साथ प्रेमपूर्ण वार्तालाप की लीला की; और अपनी अन्य रानियों के महलों में भी जगद्गुरु ने उसी प्रकार एक साधारण गृहस्थ की भाँति लीला की।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रभु अपने भक्तों की परीक्षा सन्देह से नहीं, प्रेम से लेते हैं। श्रीकृष्ण का परिहास रुक्मिणी का उत्तर प्रकट करवाने के लिए ही था, और वे दो बार यह स्वयं कहते हैं। जब परीक्षाएँ हमें झकझोरें, तो शायद वे हमसे समर्पण के अनकहे शब्द सुनना चाहते हैं।
2. भक्त प्रभु के वचनों को श्रद्धा की दृष्टि से पढ़ता है। रुक्मिणी श्रीकृष्ण के हर आत्म-निन्दा-भरे कथन को स्वीकार करके उसमें छिपी महिमा प्रकट कर देती हैं।
3. शुद्ध भक्ति केवल प्रभु को ही माँगती है। रुक्मिणी बस यही चाहती हैं कि उनके चरणों में उनका प्रेम बढ़ता रहे — यही सौदे से रहित भक्ति है।
4. प्रभु से माँगे गए वर निष्कामता की ओर ले जाते हैं। श्रीकृष्ण भक्त को जो देते हैं, वह मोक्ष में पूर्ण होता है; जो उनके पास केवल धन के लिए आते हैं, वे मन्दभागी हैं।
5. दृढ़ता मौन में भी उतनी ही सिद्ध होती है जितनी वाणी में। रुक्मिणी ने भाई का अपमान और वध बिना शिकायत सहा; श्रीकृष्ण कहते हैं कि इसी मौन ने उन्हें जीत लिया।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में हमें सबसे अधिक रुक्मिणी के महल का वैभव नहीं, बल्कि उसमें प्रकट होती कोमलता छूती है। स्वयं लक्ष्मी ऐसे कुछ शब्दों से टूट सकती हैं जो प्रभु से वियोग की आशंका जगाते हैं; उनका गिर पड़ना दुर्बलता नहीं, इस बात की माप है कि वे कितनी पूर्णता से उनकी हैं। और उठकर बोलने पर उनकी हर पंक्ति जीवन-भर की शिक्षा है: प्रभु की प्रतीत होने वाली निर्धनता उनकी पूर्णता है, और उनके शत्रु केवल हमारी ही चंचल इन्द्रियाँ हैं। फिर भी प्रभु सुधार से नहीं, विस्मय से समाप्त करते हैं — वे स्वयं को जीता हुआ स्वीकार करते हैं। यदि स्वयं लक्ष्मी उनकी एक दृष्टि को ही अपनी परम कृपा मानती हैं, तो हमें केवल उन्हें चाहना कितना अधिक सीखना चाहिए?

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज अपनी कोई एक माँग, जो आप प्रभु के सामने प्रायः रखते हैं, रुक्मिणी की इस प्रार्थना के पास रख दीजिए: “आपके चरणों में मेरा प्रेम बढ़ता ही रहे।” माँग फिर भी रखिए, किन्तु पहले उन्हें माँगिए — भक्ति, स्मरण और उनके चरणों का आश्रय। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

दशम स्कन्ध के साठवें अध्याय में प्रभु ऐसा परिहास करते हैं जिससे उनकी रानी भूमि पर गिर पड़ती हैं — और फिर उन्हें उठाकर सुनते हैं कि वे उनके एक-एक वचन को स्तुति में बदल देती हैं। दोनों का संवाद भागवत को शुद्ध भक्ति का एक अत्यन्त स्पष्ट कथन देता है: प्रभु स्वयं को उन्हें देते हैं जो और कुछ नहीं चाहते, और उनके वरदान पूर्ण हुई कामनाओं में नहीं, मोक्ष में समाप्त होते हैं। हम भी रुक्मिणी की भाँति हर परीक्षा में अडिग रहकर उनके चरण थामे रहें, और वे हमारे हृदयों में ऐसा प्रेम पाएँ जिसे वे अपना कह सकें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, भाग 2), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), षष्ठितम अध्याय, पृष्ठ 371–377।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-60-lord-krishna-teases-queen-rukmini-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट